Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies,
Online ISSN 2278-8808, SJIF 2018 = 6.371, www.srjis.com
PEER REVIEWED & REFERRED JOURNAL, MAR-APR, 2019, VOL- 6/50

वैदिक संदर्भ में शारीरिक शिक्षा तथा खेलों की सामयिक प्रकृति

सुनील सिंह सेंगर, Ph. D.

एसोसिएट प्रोफेसर एंव विभागाध्यक्ष शारीरिक शिक्षा विभाग, के0 के0 पी0 जी0 कॉलेज, इटावा, उ0 प्र0

ई – मेल : sunilsengar05@gmail.com

Abstract

शारीरिक शिक्षा तथा खेलों की प्रकृति रचनात्मक है जो नागरिकों में स्वास्थ्य, शिक्षा तथा संस्कृति के नवीन आयाम विकसित करती है। साहित्य स्त्रोत में वैदिक ग्रन्थों का खुलकर प्रयोग किया गया है जिनमें ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद की उपादेयता अपेक्षाकृत अधिक रही है। ये वेद सम्पूर्ण भारतीय जीवन में विविध पक्षों के मूल श्रोत हैं, जो भारतीय खेल के अति विश्वसनीय स्त्रोत तथा साधन हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों एवं उपनिषदों से भी पर्याप्त सामग्री ली गयी है। तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक आदि मुख्य उपनिषद् ग्रन्थों का दोहन किया गया है। सूत्र साहित्य में व्याकरण ग्रन्थ बड़े महत्वपूर्ण सिद्ध हुये हैं। पाणिनी की अष्टाध्यायी तथा कालान्तर में इस पर लिखे पातन्जलि के महाभाष्य में मल्ल विद्या एवं खेल पर प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है। सूत्रों के पश्चात् अपने वर्तमान रूप में बाल्मीकि कृत रामायण और व्यासकृत महाभारत, प्राचीन मल्ल विद्या सब खेल के प्राण स्वरूप हैं जिनके बिना यह लेख अपूर्ण रहता। वराहपुराण में अट्ठारह पुराणों की नामावली बतायी जाती है, किन्तु मल्ल विद्या एवं खेल का अधिकांश साहित्य अग्नि, विष्णु, ब्रह्माण्ड, वाराह, भागवत, मार्कण्डेय, मल्य, पद्म आदि पुराणों में पाया जाता है। मल्ल विद्या एवं खेल के श्रोत साहित्य में महाकाव्यों के बाद पुराणों का ही सापेक्षिक महत्व है।

पारिभाषिक शब्दः *क्रीड़ा, सामयिक प्रकृति,मल्लविद्या, धर्मशास्त्र।*

Scholarly Research Journal's is licensed Based on a work at www.srjis.com

भारत में क्रीड़ा/खेल : उद्भव, आयोजन व प्रतियोगिताएं :

भारतीय मल्ल कला या कुश्ती का प्रारम्भ अति प्राचीनतम काल में द्वन्द्व युद्ध के रूप में हुआ ज्ञात होता है। प्रागैतिहासिक काल में जब विभिन्न प्रकार के अस्त्र–शस्त्रों का प्रचलन नहीं था, तब द्वन्द्व युद्ध द्वारा ही शत्रुओं पर विजय प्राप्त की जाती थी। भारत के पौराणिक आख्यानों से ज्ञात होता है कि सृष्टि के आरम्भ में विष्णु और उनके अवतार वराह[1] एवं नृसिंह ने क्रमशः मधु, कैटभ, हिरण्याक्ष[2] तथा हिरण्यकशिपु[3] जैसे दैत्य योद्धाओं को द्वन्द्व युद्ध में पराजित कर उनका प्राणान्त किया था। कालान्तर में जब द्वन्द्व युद्ध ने कला का रूप धारण कर लिया तब उसके कई प्रकार प्रचलित हुए थे। इनमें से आरम्भ के तीन प्रकारों को युद्ध और अन्तिम धरणिपात्मक को

Copyright © 2019, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

नियुद्ध कहा जाता था। मल्लपुराण में मल्लयुद्ध के इन चारों प्रकारों के परम्पराओं के निर्देश मिलते हैं। किन्तु यहां क्रमशः धरणिपात, असुर नाद तथा युद्ध का निर्देश हुआ है।[4] हरिवंश में प्राणघातक मल्लयुद्ध का वर्णन प्राप्त होता है।[5] महाभारत में भीम दुर्योधन का युद्ध अंगजक युद्ध का स्वरूप ज्ञात होता है।[6] वह नियुद्ध ही वास्तव में मल्लकला या कुश्तीकला है। इसकी शिक्षा गुरूओं द्वारा विधिपूर्वक एवं व्यवस्थित रूप में दी जाती थी। युद्ध की शिक्षा में पैतरों का अभ्यास कराया जाता था। जैसे समपद पैर, घुटने आदि अवयवों को सटाकर सीधे खड़े रहना[7], दोनों पैरों के बीच में तीन बित्ते का अन्तर रखकर चुपचाप खड़े रहना, मण्डल गोल, गोल घूमना, आलीट–प्रत्यालीट, सीधे घूमना। उक्त युद्ध पद्धति का अभ्यास करना क्षत्रिय कुमारों के लिए अनिवार्य था। इससे शरीर के सभी अंग सुदृढ़ होते थे। उड़ते हुए पक्षियों का लक्ष्य बनाने का अभ्यास करने से दृष्टि और चित्त स्थिर होता था।[8]

गुरूओं द्वारा इसका अभ्यास ''रंगमण्डल (अखाड़ों) में कराया जाता था। इस कला में निष्णात होने के लिये जहां व्यायाम एवं पौष्टिक भोजन से शरीर को बलिष्ट तथा अंगमर्दन (मालिश) द्वारा उसे सुडौल बनाया जाता था। वहां विभिन्न प्रकार के दांवपेचों और उनके ''काट'' (निवारण) की शिक्षा भी प्राप्त की जाती थी।

यह कला आर्यों के साथ असुरों, दैत्यों, राक्षसी, यक्षों, नागों तथा वन्य जातियों में प्रचलित थी। आर्य मल्ल कला के आचार्य वृहस्पति, अगस्त आदि थे। आसुरी कला के आचार्य शुक्र थे। रामायण काल में रावण कुम्भकर्ण राक्षसी मल्ल कला एवं धनुष बाण आदि कला में प्रवीण थे। उसी काल में बालि, सुग्रीव, अंगद, हनुमान, जाम्बवन्त जैसे वन्य जातियों के मल्ल भी थे।

महाभारत काल में नियुद्ध एक कला के रूप में समुन्नत थी। अनेक प्रकार की कलाओं के प्रदर्शन के लिये महोत्सवों का आयोजन प्रचलित था। स्वयंवरों को देखने की इच्छा से दूर–दूर से देश–देशान्तर के नट, वैतालिक सूत, मागध एवं मल्ल युद्ध प्रवीण जन समुदाय अपनी–अपनी कला प्रदर्शित करने के लिए आते थे। बलराम, कृष्ण, भीम, अर्जुन, दुर्योधन प्रमुख थे। वकासुर, घटोत्कच, जरासन्ध और जीमूत भी विख्यात मल्ल थे। महाभारत में यवन, काम्बोज और मथुरा मण्डल के निवासियों को भी नियुद्ध का विशेषज्ञ

Copyright © 2019, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

बतलाया गया है। यादवों को यह कला बाल्य कला से ही सिखलायी जाती थी और नियुद्ध के खेल भी उनमें प्रचलित थे। इस कला का सबसे प्रामाणिक एवं स्पष्ट उल्लेख शुगकालीन एक मृण्यमूर्ति में प्राप्त होता है जिसमें दो मल्लों को लड़ने से पहिले हाथ मिलाते अंकित किया गया है। गुप्तकालीन एक तोरण पर भीम जरासन्ध के मलयुद्ध का दृश्य उत्कीर्ण है। इसमें दोनों मल्लों को लंगोट कसे हुए दिखलाया गया है। इस प्रकार ज्ञात होता है कि मल विद्या का प्रदर्शन कला–कौशल के दृष्टिकोण से किया जाता था। भरहुत की एक वेदिका पर दो व्यक्ति मल्ल क्रीड़ा में लीन दिखलाये गये हैं। राजघाट से प्राप्त शुंग काल के ठीकरे के ऊपरी भाग में कुक्कुट युद्ध और वृषभ युद्ध के दाहिनी ओर दो मल्ल दिखलायी पड़ते हैं जो कुश्ती प्रारम्भ करने की स्थिति में खड़े हैं। मानसोल्लास से स्पष्ट होता है कि राजा लोग प्रत्येक वर्ष मनोरंजन के लिये नियुद्ध या कुश्ती का आयोजन करते थे। इस काल में मल्लों की क्रीड़ा के लिये मल्लशालाओं का निर्माण भी होने लगा था। जहां मल्ल क्रीड़ा नियमित रूप से की जाती थी। इसमें दांवपेच का प्रदर्शन मुख्य रूप से होता था। अतः प्राचीन भारत में खेल (क्रीड़ा) मल्ल विद्या की प्रकृति, उसके दर्शन और आन्दोलन के पक्षों को उद्घाटित करती है। मल्ल विद्या के अर्थ, उद्देश्य व प्रकृति का अध्ययन कर लेने के पश्चात् उसके क्षेत्र का निर्धारण करना समीचीन होगा। चाहे कोई खेल हो, सबका सम्बन्ध और महत्व एक ही होता है। लेकिन जब खेल का अन्य शास्त्रों से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है तब इसका क्षेत्र पुनः व्यापक प्रतीत होने लगता है। मल्ल विद्या का या अस्त्र विद्या का भारतीय व्यायाम की अन्य शाखाओं से घनिष्ट सम्बन्ध है। धनुर्विद्या गदा–संचालन, अस्त्र–शस्त्र विद्या, मल स्तम्भ, भारश्रम, एथलेटिक्स जैसे खेलों का निश्चित तौर पर गूढ़ पारस्परिक सम्बन्ध है। जिस प्रकार मानव शरीर के विभिन्न अंगों में बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध होता है उसी प्रकार भारतीय व्यायाम की इन शाखाओं में है क्योंकि एक शास्त्र का अध्ययन अन्य शास्त्रों के अध्ययन के बिना अधूरा और अपूर्ण रहता है।

खेल, शारीरिक शिक्षा और स्वास्थ्य विज्ञान में अटूट तथा घनिष्ठ अन्तःसम्बन्ध है। स्वास्थ्य मानव जीवन की अमूल्य निधि है। मानव शरीर के विभिन्न अंगों की बनावट तथा क्रियाओं की उत्तम दशा एवं उससे उत्पन्न

Copyright © 2019, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

शक्ति का उचित सन्तुलन ही स्वास्थ्य कहलाता है। वेदों में स्वस्थ रहकर दीर्घायु की कामना की गई है। सूर्य, अग्नि, जल, वायु आदि के द्वारा रागोत्पादक रोगों और क्रिमियों के विनाश का निर्देश है। आयुर्वेद मानव के पूर्ण देहमानस स्वास्थ्य पर बल देता है। यह केवल रोगों के प्रतिरोध के लिये निषेधात्मक स्वरूप का नहीं है, अपितु पुरूष को अपनी प्राकृतिक स्थिति में रखकर उसके बल, वर्ण, ओज आदि की वृद्धि की उपाय करता है। अतएव आयुर्वेदवित स्वस्थ लक्षण विश्व का एक अद्भुत आविष्कार है। आयुर्वेद वैयक्तिक स्वास्थ्य पर विशेष बल देता है।

दिनचर्या में ब्रह्म मुहूर्त में उठने से लेकर रात्रि में सोने के पूर्व तक दन्तधोवन, अभ्यंग, व्यायाम, स्नान, आहार आदि के रात्रिचर्या में मैथुन और शयन के तथा ऋतुचर्या में ऋतु अनुसार रहन–सहन की विधायें बतायी गयी हैं। शरीर के तीन उपस्तम्भ हैं, आहार, शयन और ब्रह्मचर्य। वेद तथा पुराणों में सन्तुलित आहार के भी उल्लेख मिलते हैं।[20]

इस तरह व्यक्ति के सभी दैनिक कृत्यों को धर्म से जोड़ दिया गया था। सन्ध्यावन्दना का आयुर्वेदिक महत्व स्वीकार किया गया था। ऋषियों के दीर्घायुष्य सन्तति, यश आदि की प्राप्ति के उल्लेख किये गये हैं। चरक ने व्यायाम की शक्ति को ही बल की संज्ञा दी थी। शारीरिक चेष्टा के द्वारा जो व्यायाम किया जाता है वह देह व्यायाम कहलाता है। भारतीयों में स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिये अनेक प्रकार के धार्मिक कृत्यों का आयोजन किया जाता था। इसके अतिरिक्त भक्ष्य, भोज्य आदि पदार्थ, स्नान, मल–मूत्र त्याग विधि तथा उपवास के नियमों का पालन स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से सर्वोत्तम माना जाता है।

लोक जीवन के लिये गृहस्थाश्रम में विषयों का सुख लेने की अनुमति दी जाती थी, जिससे जीवशास्त्रीय आवश्यकता की पूर्ति होने से स्वास्थ्य वृद्धि में सहायता मिलती थी, आरम्भ से ही ब्रह्मचर्य का आयुर्वेदिक महत्व समझा गया था। वर्णाश्रम व्यवस्था में ब्रह्मचर्य की इस भांति योजना की गयी थी कि इसका पालन करने से कोई भी व्यक्ति स्वस्थ रह सकता था। वैदिक काल से ही ''ब्रह्मचर्येण'' तपसा देवा मृत्युमुपाहनत्'' की मान्यता समाज में प्रचलित थी। अनेक वीर, मल्ल तथा योद्धा इसका समुचित पालन करते थे।

Copyright © 2019, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

युद्ध की तैयारी के समय कृष्ण ने अनेक दक्ष चिकित्सकों को सेना के साथ नियुक्त किया था सुश्रुत ने स्कन्धावारों में वैद्यों की उपस्थिति को अनिवार्य और महत्वपूर्ण सिद्ध किया था। अतः खेल और स्वास्थ्य विज्ञान की बहुत सी बातें समान विषयक हैं। इसलिए स्वास्थ्य विज्ञान को शल्य विद्या की आधारशिला कहना अनुपयुक्त न होगा।

खेल विद्या (मल्लविद्या, धनुर्विद्या, मुष्ठी विद्या, गदा विद्या) का सम्बन्ध इन खेलों के आचरण उनके नैतिक उत्थान से है। नीति शास्त्र और आचार शास्त्र में अच्छे बुरे की पहचान करायी जाती है। उसी के आधार पर शारीरिक शिक्षा या खेल विद्या खिलाड़ियों के समक्ष ऊंचे आदर्श रखती है। नीति शास्त्र जिन आदर्शों को निर्धारित करता है। खेल या शारीरिक शिक्षा उन्हीं आदर्शों की प्राप्ति के लिये प्रयास करती है। यही कारण है कि खेल विद्या (शारीरिक शिक्षा) के उद्देश्यों में आचरण संहिता को दर्शाया गया है।

खेल विद्या (शारीरिक शिक्षा) का धर्म शास्त्र से भी सम्बन्ध है। धर्मशास्त्र में आत्मा, परमात्मा, मोक्ष, कर्तव्य आदि का विवेचन होता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि षड्रिपुओं पर विजय प्राप्त करने की चर्चा होती है। ये सब खिलाड़ियों के लिये भी अत्यन्त आवश्यक है। गीता में कर्तव्य पालन का उपदेश दिया गया है। ''आत्मानम् विद्धि'' धर्मशास्त्र कहते हैं कि अपने को जानो। अतः खिलाड़ियों के लिये भी आवश्यक रहता था कि वे आत्मज्ञान करें। इसलिए कहा जा सकता है कि धर्मशास्त्र और खेल विद्या (शारीरिक शिक्षा) में अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है।

खेल का दर्शन और मनोविज्ञान में तो नीर क्षीर जैसा सम्बन्ध है। ''परम सत्य का ज्ञान'' दर्शन की विषय वस्तु है जिसे ही ग्रहण करके एक खिलाड़ी ने खेल दर्शन का ताना–बाना बुना है। क्रीड़ा जगत में खिलाड़ियों को प्रत्येक क्षण प्रतिपक्षी के मनोविज्ञान का अध्ययन करते रहना पड़ता है। मनोविज्ञान मनुष्य के मस्तिष्क का अध्ययन करता है और खिलाड़ी उस मस्तिष्क का दौड़ना तुरन्त रूकना, अपने पक्ष वाले को पास देना, फिर बॉल लेना और गोल करना, कुश्ती में दांव पेंच करना, बचाव करना (रियेक्शन टाइम) और मनोविज्ञान का प्रतिक्षण प्रयोग होता है। खेल में जहां भी निराशा हुई, खिलाड़ी कितना भी ताकतवर क्यों न हो; हार जाता है। इस प्रकार मनोविज्ञान को खेल का कुन्जी कहना उपयुक्त होगा। इस प्रकार खेल

Copyright © 2019, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

की विषय वस्तु, उसकी कला के रूप में प्रतिष्ठापना तथा अन्य शास्त्रों से उसके सम्बन्धों द्वारा उसके व्यापक क्षेत्र का ज्ञान होता है।

प्राचीन, मल्ला विद्या, धनुर्विद्या, मुष्टी विद्या आदि के साथ साहित्य पर प्रकार डालना जरूरी है। इनमें सर्वप्रथम उपयोग शास्त्र आते हैं। शास्त्र दो प्रकार के होते हैं– (1) पौरूषेय और (2) अपौरूषेय। अपौरूषेय शास्त्र श्रुति है और पौरूषेय शास्त्र चार हैं– पुराण, आन्वीक्षिकी, मीमांसा और स्मृति। इस प्रकार वेद 4, वेदाड.ग 6 और पौरूषेय शास्त्र 4, कुल मिलाकर 14 शास्त्र भेद हुये। कुछ लोग वार्ता, काम सूत्र, शिल्प शास्त्र और दण्डनीति जोड़कर 18 विद्या मानते हैं जिन्हें आज 'उपयोगी साहित्य' माना जाता है। उपयोगी साहित्य के वर्ग में क्रीड़ा और आमोद–प्रमोद के साहित्य भी आते हैं। उपयोगी और ललित साहित्य में तीन प्रकार के सम्बन्ध होते हैं– गद्य पद्मयत्व, कवि– धर्मत्व और हितोपदेशकत्व। किसी भी रचना के पूर्व शास्त्र में अभिनिवेश होना आवश्यक है। शास्त्र परिचय बिना खेल विद्या पर लिखना दीपक के बिना अंधेरे में टटोलने के समान है। खेल विद्या पर उपलब्ध पुरातत्वीय साधनों से कम से कम किन्तु साहित्य साधनों से प्रभूत सहायता ली गयी है। मोहनजोदड़ों तथा हड़प्पा के प्राचीन उत्खननों, मुहरों एवं मूर्तियों से, भरहुत के अवशेषों एवं मूर्तियों तथा राजघाट की खुदाई से प्राप्त सूचनाओं को स्त्रोत के रूप में प्रयुक्त किया गया है। अशोक के उत्कीर्ण लेखों, शिलालेखों एवं स्तम्भ लेखों को स्त्रोत साहित्य की तरह यथास्थान इस्तेमाल किया गया है। इनके अभाव में भारतीय खेल विज्ञान की जानकारी अपूर्ण रहती है।

साहित्य स्त्रोत में वैदिक ग्रन्थों का खुलकर प्रयोग किया गया है जिनमें ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद की उपादेयता अपेक्षाकृत अधिक रही है। ये वेद सम्पूर्ण भारतीय जीवन में विविध पक्षों के मूल श्रोत हैं, जो भारतीय खेल के अति विश्वसनीय स्त्रोत तथा साधन हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों एवं उपनिषदों से भी पर्याप्त सामग्री ली गयी है। तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक आदि मुख्य उपनिषद् ग्रन्थों का दोहन किया गया है। सूत्र साहित्य में व्याकरण ग्रन्थ बड़े महत्वपूर्ण सिद्ध हुये हैं। पाणिनी की अष्टाध्यायी तथा कालान्तर में इस पर लिखे पातन्जलि के महाभाष्य में मल्ल विद्या एवं खेल पर प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है। सूत्रों के पश्चात् अपने

Copyright © 2019, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

वर्तमान रूप में बाल्मीकि कृत रामायण और व्यासकृत महाभारत, प्राचीन मल्ल विद्या सब खेल के प्राण स्वरूप हैं जिनके बिना कोई भी शोध प्रबन्ध अपूर्ण रहता है। महाभारत का दावा है कि जो महाभारत में है वह विश्व में है, जो महाभारत में नहीं है, वह विश्व में नहीं है। आगे चलकर श्रीमद्भागवत गीता में मल्लविद्या एवं खेल से सम्बन्धित कुछ आहार–व्यवहार के तथा कर्मयोग से सम्पार्किय कतिपय संकेत मिले हैं।

तदन्नतर बौद्ध व जैन साहित्य भी मल्ल विद्या एवं खेल के स्त्रोत के रूप में प्रतिष्ठित हुये। बौद्ध साहित्य का सबसे पुराना स्तर जातकों का है। जातकों से यथेष्ट सहायता ली गयी है। त्रिपिटकों में से विनयपिटक सर्वाधिक सहायक सिद्ध हुआ है। पालि व प्राकृतिक ग्रन्थों में मल्ल विद्या एवं खेल पर चर्चा पायी जाती है। जैन साहित्य के आचारांग सूत्र बहुत ही उपयोगी श्रोत साहित्य सिद्ध हुआ है।

कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' और मेगस्थनीज का 'इण्डिया' के कतिपय अंश भारतीय खेल तथा मल्लविद्या पर प्रकाश डालते हैं। संस्कृति साहित्य धर्मशास्त्र (स्मृतियां) और उनके भाष्य, टीका और उनके आधार पर लिखे गये ग्रन्थों का विस्तार बड़ा विशाल है। इनमें मनुस्मृति भारतीय मल्लों पर छिटपुट रोशनी डालती है।

वस्तुतः महाकाव्यों के साथ ही पुराणों का उल्लेख करना चाहिए था। शायद रचना क्रम में ये अपने मुख्य भागों में महाकाव्यों के ही समकालीन हो सकते हैं, परन्तु विषय की दृष्टि से इसमें गुप्त काल, मुगल काल, ब्रिटिश काल की सामग्री संगहीत हैं। वराहपुराण में अट्ठारह पुराणों की नामावली बतायी जाती है, किन्तु मल्ल विद्या एवं खेल का अधिकांश साहित्य अग्नि, विष्णु, ब्रह्माण्ड, वाराह, भागवत, मार्कण्डेय, मल्य, पद्म आदि पुराणों में पाया जाता है। मल्ल विद्या एवं खेल के श्रोत साहित्य में महाकाव्यों के बाद पुराणों का ही सापेक्षिक महत्व है।

संदर्भः

Bhagawat Puran, 3/19/26.
Ibid; 217/14.
Malla Puran 15/1-2.
Harivansh, 3/3/30/37.
Agnipuran, 9/57/27.
Mahabharata, 4/67/68.
Mahabharata 4/6/963.
Charak Sanhita; Sutra 11/25.

Copyright © 2019, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies